



2026:AHC:53624

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

अवमानना आवेदन (सिविल) संख्या - 1639/2026

माधवी सिंह

..... प्रार्थी(गण)

बनाम

डा. चन्द्र प्रकाश मुख्य चिकित्साधिकारी कुशीनगर एवं अन्य

..... विपक्षी(गण)

प्रार्थी(गण) के अधिवक्ता : अभिषेक कुमार कुशवाहा, नितिन चंद्र

विपक्षी(गण) के अधिवक्ता :

न्यायालय संख्या - 9

माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल

1. रिट न्यायालय ने दिनांक 12.11.2025 को रिट- ए संख्या 16884/2025 में आदेश पारित किया था, जो इस प्रकार है:-

"1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री नितिन चंद्र मिश्रा और राज्य-प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री जितेंद्र प्रसाद को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता की शिकायत यह है कि उनके पिता, श्री माधव मुरारी सिंह, जो मुख्य फार्मासिस्ट के पद पर कार्यरत थे, का दिनांक 23.07.2018 को सेवाकाल के दौरान ही निधन हो गया और उसी तारीख को याचिकाकर्ता के दो भाइयों और माता का भी निधन हो गया। उस समय, याचिकाकर्ता नाबालिग था, और वर्ष 2023 में बालिग होने के बाद, उसने अनुकंपा नियुक्ति के लिए अपना दावा प्रस्तुत किया। हालाँकि, याचिकाकर्ता के अनुसार, इस संबंध में सभी आवश्यक जानकारी उपलब्ध कराने के कथन के संबंध में एक पत्राचार मौजूद है।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



3. वर्तमान याचिका में यह प्रार्थना की गई है कि प्रतिवादियों को निर्देशित किया जाए कि वे याचिकाकर्ता को अनुकम्पा नियुक्ति प्रदान करें तथा उसके फलस्वरूप उसे कार्यभार ग्रहण करने दिया जाए।
4. विद्वान स्थायी अधिवक्ता का कहना है कि जो भी हो, यह निर्णय याचिकाकर्ता को स्वयं लेना है और वह द्वितीय प्रतिवादी, मुख्य चिकित्सा अधिकारी, कुशीनगर के समक्ष जा सकता है।
5. इस पर याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने कोई आपत्ति नहीं की और इसे सहर्ष स्वीकार किया।
6. पक्षकारों के प्रतिद्वंद्वी तर्कों तथा उनके द्वारा लिए गए रुख को ध्यान में रखते हुए, याचिका का निस्तारण इस स्वतंत्रता के साथ किया जाता है कि याचिकाकर्ता एक विस्तृत प्रत्यावेदन, याचिका की स्वयं सत्यापित प्रति के साथ, द्वितीय प्रतिवादी मुख्य चिकित्सा अधिकारी, कुशीनगर के समक्ष प्रस्तुत करे। उक्त प्राधिकारी, प्रत्यावेदन प्राप्त होने पर, प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर, विधि के अनुसार याचिकाकर्ता के दावे का निर्णय करेगा, जिसमें उसकी उपयुक्तता, पात्रता एवं प्रतिस्पर्धी दावों का भी ध्यान रखा जाएगा।
7. जहां तक देयकों का संबंध है, याचिकाकर्ता को अपना दावा प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता होगी और प्रतिवादियों को निर्देशित किया जाता है कि वे उसी समयावधि के भीतर उसका निर्णय करें।"

2. उपर्युक्त आदेश के अवलोकन से स्पष्ट है कि आवेदक को यह स्वतंत्रता प्रदान की गई थी कि वह संबंधित प्राधिकारी के समक्ष प्रत्यावेदन प्रस्तुत कर अपना दावा रखे, जिस पर अंतिम निर्णय संबंधित प्राधिकारी द्वारा लिया जाना था।
3. यह न्यायालय यह पाता है कि न्यायालयों की अवमानना अधिनियम की धारा 2(ब) सिविल अवमानना को परिभाषित करती है, जो इस प्रकार है:-

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



“2. (ब) ‘दीवानी अवमानना’ से आशय किसी न्यायालय के किसी निर्णय, डिक्री, निर्देश, आदेश, रिट या अन्य प्रक्रिया की जानबूझकर अवज्ञा या न्यायालय को दिए गए किसी आश्वासन का जानबूझकर उल्लंघन है;”

4. सर्वोच्च न्यायालय ने डॉ. यू.एन. बोरा बनाम असम रोलर फ्लोर मिल्स एसोसिएशन, (2022) 1 एससीसी 101 में यह प्रतिपादित किया है कि अवमानना क्षेत्राधिकार के अंतर्गत न्यायालय से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह व्यापक जांच करे या ऐसे मुद्दों का निर्णय करे, जिन पर मूल न्यायालय द्वारा विचार या निर्णय नहीं किया गया था, जिसके आदेश के उल्लंघन का आरोप लगाया गया है। निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर 8 का सार इस प्रकार है:

“8. हम दीवानी अवमानना के विषय में बात कर रहे हैं। अवमानना अधिनियम, 1971 के अनुसार दीवानी अवमानना का अर्थ न्यायालय के आदेश की जानबूझकर अवज्ञा है। अतः, यहाँ जो बात प्रासंगिक है, वह है “जान-बूझकर” की गई अवज्ञा। अवमानना आदेश के संदर्भ में, जानकारी का विशेष महत्व होता है। केवल इसलिए कि किसी अधीनस्थ अधिकारी ने न्यायालय द्वारा पारित आदेश की अवहेलना की, जानकारी के अभाव में किसी उच्च अधिकारी पर दायित्व नहीं डाला जा सकता। जब दो दृष्टिकोण संभव हों, तो स्वेच्छा का तत्व समाप्त हो जाता है, क्योंकि इसमें एक मानसिक तत्व निहित होता है। यह एक जान-बूझकर, सचेत और सोची-समझी कार्रवाई है। यहाँ ‘उचित संदेह से परे’ प्रमाण की आवश्यकता है, क्योंकि ये कार्यवाही अर्द्ध-आपराधिक प्रकृति की हैं। इसी तरह, जब कोई अलग तंत्र उपलब्ध कराया गया हो और वह भी उसी फ़ैसले में, जिसके उल्लंघन का आरोप है तो किसी भी पक्ष को ‘न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971’ के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का इस्तेमाल करते हुए न्यायालय में प्रवेश से पहले, उस तंत्र का पूरी तरह से इस्तेमाल कर लेना चाहिए। संबंधित पक्ष के लिए यह पूरी तरह से खुला है कि वह यह तर्क दे कि पारित आदेश का लाभ वास्तव में नहीं दिया गया है; वह उचित राहत की मांग करते हुए अलग कार्यवाही के माध्यम से ऐसा कर सकता है, लेकिन निश्चित रूप से



अवमानना कार्यवाही के माध्यम से नहीं। अवमानना याचिका पर सुनवाई करते समय, न्यायालय से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह कोई विस्तृत जाँच करे और उस मूल निर्णय से आगे जाए, जिसका कथित तौर पर उल्लंघन किया गया है। इस सिद्धांत को और भी अधिक सख्ती से तब लागू किया जाना चाहिए, जब तथ्यों से जुड़े विवादित प्रश्न शामिल हों और उन्हें पहले उठाया गया हो, लेकिन मूल कार्यवाही पर निर्णय लेने के लिए एक विशिष्ट मंच का गठन करके जान-बूझकर उन पर विचार न किया गया हो।"

5. रिट न्यायालय द्वारा पारित आदेश को देखने पर, मुझे पता चलता है कि रिट न्यायालय द्वारा कोई निर्णय नहीं दिया गया है और आवेदक को संबंधित अधिकारियों से संपर्क करने का निर्देश दिया गया था, जिसके लिए उसे एक प्रत्यावेदन देना था, जिस पर अधिकारियों को अंतिम निर्णय लेना था।

6. अवमानना का कोई मामला नहीं बनता है।

7. अवमानना याचिका गलत धारणा पर आधारित है और इसे निरस्त किया जाता है।

(माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल)

17 मार्च, 2026

एस.के. गोस्वामी